**ओ३म्**

 **‘योग साधना से ईश्वर की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का प्रमुख उद्देश्य’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

योग शब्द का प्रयोग मुख्यतः आत्मा को ईश्वर के साथ जोड़ने को कहा जाता है। आत्मा को ईश्वर से जोड़ने का तात्पर्य है कि जीवात्मा को शुद्ध व पवित्र बनाकर उसका निरन्तर ध्यान करते हुए उसमें खो जाना जैसा कि हम यदा कदा अपने इच्छित विषय का ध्यान व अध्ययन करते हुए उसमें पूर्णतः खो जाते हैं। ईश्वर के गुणों व उसके उपकारों का जब हम ध्यान करते हुए एकाग्र हो जाते हैं और हमारे मन व अन्य सभी इन्द्रियों का बाह्य जगत से सम्पर्क सर्वथा टूटा हुआ होता है, तो यह योग की उन्नत अवस्था होती है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए अनेक साधनों व उपायों का सहारा लेना होता है जिसमें यम व नियम योग की प्रथम सीढ़िया कहलाते हैं। बिना यम व नियम का पालन किये योग में स्थिति बनाना व सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। अतः इन्हें जानकर इनका पूरी निष्ठा व तत्परता से हर समय पालन करना आवश्यक होता है। यम अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह हो कहते हैं। अंहिसा का अर्थ दूसरों के प्रति वैर अथवा विरोध की भावना को समाप्त करना, सत्य का ही पालन करना तथा असत्य व्यवहार से दूर रहना है। अस्तेय का अर्थ चोरी न करना अर्थात् छुप कर व प्रकट रूप में ऐसा कोई कार्य न करना है जो मर्यादा व आचरण के नियमों के विपरीत हो। ब्रह्मचर्य का अर्थ है कि अपनी सभी ज्ञान व कर्मेन्द्रियों को वश में रखना, उन्हें स्वेच्छाचार वा अमर्यादित आचरण से रोक कर ईश्वर के गुण-कीर्तन व चिन्तन-मनन सहित ईश्वर के अनादि काल से हम पर किये गये उपकारों को स्मरण करते रहना है। अपरिग्रह का अर्थ होता है कि आवश्यकता व सुख के साधनों का अधिक मात्रा में संचय न करना। अपरिग्रही जीवन ऐसा जीवन बनाना होता है कि जिससे कम से कम साधनों व धन से हमारा जीवन त्यागपूर्वक व्यतीत हो। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए हमें सांसारिक पदार्थों के प्रति मोह व संग्रह की भावना का त्याग कर ईश्वर को प्राप्त करने की अपनी इच्छा व भावना को मुख्य स्थान देते हुए अपने सभी व्यक्तिगत व सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करना होता है।

 यम की तरह नियम भी पांच है जो योग की सफलता में अपरिहार्य एवं महत्वपूर्ण हैं। यह पांच नियम हैं शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। शौच आन्तरिक व बाह्य स्वच्छता को कहते हैं। सन्तोष का अर्थ है कि समस्त इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर किसी भी अवस्था में असन्तुष्ट न होना। अनुकूल और प्रतिकूल स्थितियों में सन्तुष्ट रहने का नाम ही सन्तोष है। तप का अर्थ है कि योगदर्शन के अनुसार अपने जीवन को सक्रिय रखते हुए आलस्य न करना और योग के सभी नियमों व साधनों का अभ्यास व पालन करते हुए योगमार्ग पर आगे बढ़ते जाना। तप को पुरुषार्थ से युक्त जीवन भी कह सकते हैं जिसका उद्देश्य ईश्वर की प्राप्ति में बाधक सभी विघ्नों पर विजय प्राप्त करते हुए अधिक से अधिक पुरुषार्थ व तपस्वी जीवन व्यतीत करना। तप के बाद स्वाध्याय का स्थान है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वाध्याय से ही योग के मार्ग को जाना जाता है। इसके लिए सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन कर मनुष्य जीवन के उद्देश्य व वैदिक ज्ञान विषयक प्रमुख बातों को जानकर योग दर्शन सहित उपनिषद, दर्शन, वेद भाष्य एवं वैदिक साहित्य के इतर ग्रन्थों का अध्ययन करना होता है। ऐसा करके ही हम ईश्वर और जीवात्मा सहित प्रकृति के यथार्थ स्वरुप व इनके विज्ञान से पूर्णतया परिचित हो जाते हैं। इसका पालन करते हुए योग साधक को क्रियात्मक अभ्यास व अपने आचरण को शुद्ध, पवित्र रखते हुए अधिक से अधिक समयावधि तक नियमित ईश्वर का ध्यान, चिन्तन, जप व स्वाध्याय पर केन्द्रित रखना होता है। स्वाध्याय करते हुए पांचवें नियम ईश्वर प्रणिधान का भी योगाभ्यासी को पालन करना होता है। ईश्वर प्राणिधान ईश्वर को जानकर समर्पित भाव से उसकी कृपा प्राप्त करने के लिए प्रतिदिन प्रातः व सायं निश्चित समय पर न्यूनतम एक घटां स्तुति, प्रार्थना व उपासना द्वारा उसका वन्दन करना है। सभी यम व नियमों को योग साधना की नींव कह सकते हैं। इनका अभ्यास हो जाने पर योगाभ्यासी योग साधना के मार्ग पर तीव्रता से आगे बढ़ता है और उसको ईश्वर भक्ति से प्राप्त होने वाले लाभ मिलना आरम्भ हो जाते हैं।

 योग साधना में आसन का अपना विशेष महत्व है। यदि आसन सिद्ध नहीं होगा तो ईश्वरोपासना में एकाग्रता व ध्यान की निरन्तरता स्थापित नहीं की जा सकती। आरम्भ में कठिनाईयां आती हैं परन्तु अभ्यास से स्थिर आसन को प्राप्त किया जा सकता है। योग साधना के लिए युवावस्था उपयुक्त समय है। आसन पद्मासन व सुखासन आदि कोई भी हो सकता है। आसन के बाद योग साधक को प्राणायाम का अभ्यास करना होता है। प्राणायाम का तात्पर्य श्वास प्रश्वास वा सांस के लेने व छोड़ने में उसकी गति का रुक जाना वा रोक देना अथवा उसमें अन्तर डाल देने को कहते हंै। प्राणायाम से स्वास्थ्य विषयक अनेक लाभों के साथ मन का ईश्वर में एकाग्र होना सिद्ध होता है। प्राणायाम से मन नियंत्रित होता है और ईश्वरोपासना में स्थिर रहता है। महर्षि दयानन्द ने सन्ध्योपासना विधि में तथा अन्यत्र प्राणायाम विधि का उल्लेख किया है। महात्मा नाराण स्वामी जी ने इस पर लघु पुस्तिका भी लिखी है। उसको पढ़कर अभ्यास करते हुए किसी योगी से भी परामर्श कर लेना उचित होता है जिससे उसकी किसी क्रिया से स्वास्थ्य को किसी प्रकार की हानि न हो।

 अष्टांग योग में पांचवे स्थान पर प्रत्याहार है। प्रत्याहार में सभी ज्ञानेन्द्रियों का अपने विषयों से हटा कर अपने चित्त व आत्मा में समाहित करना होता है। प्राणायाम के अभ्यास और मन व आत्मा को ईश्वर चिन्तन व जप आदि में लगाने से यह स्थिति प्राप्त होती है। योग का छठा सोपान धारणा है जो देह के किसी अंग विशेष अथवा लक्ष्य विशेष में चित्त को बांध देने व टिका देने को कहते है। धारणा के सिद्ध होने पर ईश्वर का ध्यान करना सुगम हो जाता है। ध्यान मन को सांसारिक व इन्द्रियों के विषयों के चिन्तन से पूर्णतया मुक्त व रोक देने को कहा जाता है। जब मन में विषयों का चिन्तन रुक जायेगा तो आत्मा ईश्वर के चिन्तन-मनन, स्तुति-प्रार्थना व जप आदि में लग कर ईश्वर से जुड़ कर उससे एकाकार होकर समाधि अर्थात् ईश्वर साक्षात्कार को प्राप्त होते हैं। समाधि अवस्था वह अवस्था है कि जब योगी ईश्वर को समर्पित हो जाता है तथा उसे अपनी किसी इन्द्रिय व उसके विषयों का किंचित भी ज्ञान नहीं रहता। वह ईश्वर के ध्यान में निमग्न रहकर उसके आनन्द का अनुभव करता है। ईश्वर विषयक कोई शंका व जिज्ञासा इस अवस्था में शेष नहीं रहती और वह पूर्णतया निभ्र्रान्त ज्ञान को प्राप्त होता है। समाधि वा ईश्वर साक्षात्कार ही मनुष्य जीवन का परमोत्तम लक्ष्य व उद्देश्य है। इसको प्राप्त कर लेने पर संसार में कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहता। जिस उद्देश्य से परमात्मा ने हमें मनुष्य का जन्म दिया है, वह पूरा हो जाता है। इस स्थिति को बनाये रखना जीवन मुक्त अवस्था कहलाता है। बहुत से लोग समाधि को प्राप्त होकर भावी जीवन में अपने किन्हीं अपकार्यों से गिर भी सकते हैं, अतः योगी का अपने आचरण में सावधान रहना बहुत आवश्यक है। महर्षि दयानन्द के जीवन को एक योगी का आदर्श जीवन माना जा सकता है। उनके अनेक विद्वानों के लिखे हुए जीवन चरित्र भी उपलब्ध हैं जिनका अध्ययन कर अनुकरण द्वारा लाभ उठाया जा सकता है। योगाभ्यास करते हुए योग साधक को योग दर्शन व उस पर विद्वानों के उत्तमोत्तम भाष्यों का अध्ययन करते हुए योग विषय में अपने ज्ञान को अद्यतन रखना चाहिये। स्वाध्याय विषयक योग सूत्र 2/44 **‘स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः’** का रहस्य बताते हुए पं. उदयवीर शास्त्री ने लिखा है कि **श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय के अनुष्ठान से अनेक बार स्वाध्यायी के मस्तिष्क में आकस्मिकरूप से अभिलषित अर्थ प्रतिभाष हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई दिव्य आत्मा आकर इस अर्थ को बता गया है। ऐसे स्वाध्यायशील योगी के मस्तिष्क अथवा भावनाओं में देव, ऋषि एवं सिद्ध आत्मा दर्शन देते जाने जाते हैं। याोगी इनसे अचानक सन्मार्ग एवं सम्प्रवृत्तियों की दिशा को जानने समझने में सफल होता है।**

 ऋषि दयानन्द योग विषयक अपने व्याख्यान में सत्यार्थप्रकाश के सप्तम् समुल्लास में कहते हैं कि जो उपासना (अर्थात् योग) करना चाहे, उसके लिये यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रक्खे। सर्वदा सब से प्रीति करे। सत्य बोले। मिथ्या कभी न बोले। चोरी न करे। सत्य व्यवहार करे। जितेन्द्रिय हो। लम्पट न हो और निरभिमानी हो। अभिमान कभी न करे। ये पांच प्रकार के यम मिल के उपासना योग का प्रथम अंग हैं। (उपासक व योगी को) राग-द्वेष छोड भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहे। धर्म से पुरुषार्थ करने से लाभ में न प्रसन्नता और हानि में अप्रसन्नता न करे। प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे। सदा दुःख-सुखों का सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे, अधर्म का नहीं। सर्वदा सत्य शास्त्रों को पढ़े पढ़ावे। सत्पुरुषों का संग करे और **‘ओ३म्’** इस एक परमात्मा के नाम के अर्थ का विचार करे। नित्यप्रति जप किया करे। अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे। इन पांच प्रकार के नियमों को मिला के उपासना योग का दूसरा अंग **‘नियम’** कहाता है। ... जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में, वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न हो कर संयमी होवें। जब इन साधनों को करता है, तब उस का आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्यप्रति ज्ञान-विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुंच जाता है। जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है, वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है। वहां सर्वज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण, और द्वेष, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक मान, अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर-बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ़ स्थित हो जाना निर्गुणोपासना कहाती है। **इस का फल जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूट कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं, इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये। इससे, इस का फल पृथक् होगा, परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घभरावेगा और सब को सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रक्खे हैं, उस का गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना, कृतघ्नता और मूर्खता है।** इन पंक्तियों में ऋषि दयानन्द ने जो कुछ लिखा है वह योग साधना के ही अन्तर्गत है। लेख को विराम देने से पूर्व हम ऋषि दयानन्द सरस्वती जी की पंचमहायज्ञ विधि का उल्लेख करना समीचीन समझते हैं जिसमें प्रथम महायज्ञ **‘ब्रह्म यज्ञ वा सन्ध्योपासनाविधि’** है। सभी आर्य इसे प्रातः व सायं समय करते हैं। यह योग साधना का प्रमुख साधन होने से यथार्थ योग है जिसको पूर्णता से करने पर जीवात्मा की उन्नति होती है और कालान्तर में वह समाधि को प्राप्त कर सकता है। सन्ध्या के समर्पण मन्त्र में योग में उन्नति की पराकाष्ठा विषयक प्रार्थना करते हुए ध्याता वा उपासक ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि **‘हे दयावान ईश्वर आपकी कृपा से हम सन्ध्या, जप व उपासना आदि कार्यों को करते हुए धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की सिद्धि को आज ही प्राप्त होंवे।’**

योग साधना ईश्वर का साक्षात्कार करने के साधनों व विधि का श्रद्धपूर्वक आचरण करने को कहते हैं। इसका पूर्णता से प्रकाश ऋषि दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थों में किया है। पंचमहायज्ञ विधि में लिखे शब्दों को प्रस्तुत कर हम इस लेख को विराम देते हैं। वह लिखते हैं कि **‘(सन्ध्योपासना हेतु मनुष्य को चाहिये कि वह) एकान्त देश में आत्मा, मन और शरीर को शुद्ध शान्त करके, उस-उस कर्म में चित्त को लगा के, तत्पर होना चाहिए। इन नित्यकर्मों के फल ये हैं कि ज्ञानप्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्यता होने से, शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्यों की सिद्धि होना। इससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सिद्ध होते हैं (यही योग साधना के अन्तिम उद्देश्य वा फल हैं)। इनको प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है।’** इसी के साथ लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**